कहानी

सरस्वती

रमेश चन्द्र

सरस्वती को आनुवंशिकी में निरक्षरता पहली विरासत के रूप में मिली थी। यूँ उसके निरक्षर माँ-बाप ने उसका नाम कुछ सोच-समझकर रखा था, परंतु उन्हें न मालूम था कि उसका अर्थ क्या है। घर में एक कैलेंडर था। उस पर सरस्वती देवी की सुंदर-सी मूर्ति बनी थी। इसलिए उसकी सुंदरता को देखते हुए उसने अपनी बेटी का नाम उसके नाम पर रख दिया था। विद्यादेवी को यह भी नहीं पता था कि वह विद्या की देवी है।

विद्या के क्षेत्र में विद्या की देवी नामा सरस्वती पाँचवीं कक्षा तक ही पहुँच पाई थी। पाँचवीं कक्षा में भी वह पहुँच तो गई थी, परंतु उसे पास नहीं कर पाई थी। विद्यादेवी की नजर में उसके फेल होने का कारण कुछ और ही था। एक बार जब उसके भाई ने उससे कारण पूछा तो विद्यादेवी ने कहा- 'भाई छोरी पास तो हो जाती पर म्हारा भाग ही माड़ा था।'

'क्यों क्या बात हो गई? बीमार हो गई थी क्या?' भाई ने पूछा।

'नहीं, बीमार तो नहीं हुई।'

'तो पेपर नहीं दे पाई क्या?'

'नहीं, पेपर भी खूब अच्छी तरया दिए।'

'तो कोई और बात हो गई?'

'नहीं, कुछ भी बात नहीं हुई।'

'तो फिर क्या हुआ?' भाई ने जोर देकर पूछा।

'इसकै साथ गड़बड़ी हो गई।' विद्या देवी ने लंबी सांस लेकरकहा।

'क्या गड़बड़ी हो गई?'

'भाई इसनै नकल ना मिली!'

विद्यादेवी का भाई अपना सिर थामकर रह गया। उसने उसे समझाने की कोशिश की, परंतु वह नहीं समझी। उलटे उससे बोली- 'ना भाई, इसके साथ तो गड़बड़ी हुई सै। जब सारी छोरी पास हो गई तो के या ही ना पास हो थी? तू ही देख, वा चमारा की छोरी भी पास कर दी, पर या फैल कर दी। इस बार मास्टराँ नै बड़ा जुल्म करा। छोरी कै आगै-पीछै अलग-अलग क्लाशाँ की छोरी बैठा दी। किसी तै पूछण भी ना पाई।

रमेश चन्द्र हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। वर्तमान में केंद्रीय नागर विमानन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गठित हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में कार्यरत।

अर उठ कै जाण लागी तो उठण ना दी। किसी तै बोलै तो बोलण ना दी। जगह-जगह पुलिस वाला खड़ा कर दिया। तू ही बता, इसकै साथ जुल्म हुया कै ना? जालमाँ नै इतनी सुथरी छोरी भी फैल कर दी!'

भाई अपनी हँसी रोके न रोक सका। लेकिन विद्या देवी थी कि बोलती ही जा रही थी। उसने फिर कहा- 'अर जुल्मियाँ नै इतणा तै भी ना सआरी। म्हारा खुशिया देवर कह रहा था उन नै छोरी का पर्चा भी तो सब तै बाद में ही देख्या। छोरी नै के नम्बर मिलते? तब तक सारे नम्बर ही खत्म हो गए? छोरी फैल ना हो तो के करै? अर हुया ना जुल्म?'

विद्या देवी का भाई बहन की अज्ञानता पर अंदर ही अंदर सोचता रहा। उसे इस बात का बड़ा दुख हुआ कि अनपढ़ व्यक्ति कितने अज्ञान में रहता है। उसे जैसे चाहे कोई बहका दे। और भाई को तो यह भी मालूम था कि इसने उसका नाम तो सरस्वती देवी रख दिया था, परंतु यह उसे पढ़ने बिल्कुल नहीं देती थी। हमेशा घर के कामों में ही लगाए रखती थी।

> उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं था कि औरतों की दशा सुधारने के लिए कितने समाज-सेवकों ने दहेज, सती, अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा, कन्या वध जैसी कितनी ही प्रथाओं को खत्म करने के लिए अपना जीवन होम कर दिया। उसे यह भी नहीं पता था कि इन सब बातों का ज्ञान शिक्षा से होता है। परंतु यह वह बहुत अच्छी तरह जानती थी कि लड़की की शादी के लिए उसका सुंदर होना और दो-चार क्लाश पास कर लेना काफी है। सरस्वती में ये दोनों गुण थे। इसलिए स्कूल से हटा लेने और उसका जीवन होम करने के लिए विद्यादेवी के लिए यही बात काफी थी। वैसे भी वह उसको 'गुणवंती' बनाना चाहती थी। खाना बनाना, खेत के काम करना, कढ़ाई-सिलाई करना और छोटे बच्चों को खिलाना। गुणवती होने के लिए ये काम आने जरूरी हैं।

राजस्थान की मरु भूमि में रहने वाली विद्यादेवी को शहर जाने का कभी मौका नहीं मिला था। एक बार सरस्वती बीमार हो गई तो विद्यादेवी को उसे खुद ही शहर ले जाना पड़ा था। खुशिया देवर ने जब देखा कि भाभी शहर जा रही है तो उसने बड़े गंभीर भाव में कहा- 'भाभी छह नम्बर बस में जाना और सरस्वती को रसवंती के बटेऊ जसवंत सिंह के पास दिखा देना, उसका ये पता है।' फिर उसने उससे एक मजाक भी कर दिया- 'और सुन भाभी, बस में जूती उतार कर चढ़ना, नहीं तो टैक्स लग जाएगा!'

विद्यादेवी की सांस में गाँव की संस्कृति रची-बसी थी। उसने देवर की बातें सच मानकर गांठ बांध ली। गाँव के बस स्टैंड पर खड़ी होकर वह गिनने लग गई कि कितनी बसें चली गई हैं। यह पहली बस है, यह दूसरी है, यह तीसरी, यह चौथी...! काफी देर बाद जब देवर भी बस-स्टैंड की तरफ आया तो उसने पूछा- 'भाभी बस नहीं आई क्या?'

'आई थी, एक तो देख वा जा रही।'

'यहाँ रुकी नहीं?'

'रुकी थी।'

'तो बैठी क्यों नहीं?'

'देवर, वा तो चौथी ही बस थी। थमनै ही तो बताई थी छह नम्बर बस में जाणा।'

भाभी की बात सुनकर देवर फिर हँसते-हँसते रुका। उसने समझ लिया था कि वह छह नंबर बस को छठी बस समझ गई थी। उसने बताया- 'बसें गिनती के हिसाब से थोड़े आती हैं। सब अपने-अपने टाइम के अनुसार आगे-पीछे आती हैं। या ही तो छह नम्बर बस थी।'

'तो मन्नै के पता? मैं कोई पढ़ी-लिखी हूँ?' विद्यादेवी ने कहा।

इतने में खुशिया को एक और बस आती दिखाई दे गई। उसने उसे बताया कि यह भी छह नम्बर बस है। इसमें बैठ जाना। विद्या देवी जूती हाथ में लेकर बस में चढ़ गई और बस में खाली सीट होने पर भी नीचे बैठ गई। कंडक्टर ने उसे सीट पर बैठने के लिए कहा तो वह बोली- 'बेटा, जनानी नीचै ही बैठा करै है।'

'नीचै क्यूँ बैठा करै है? ताई तू ऊपर बैठ।' कंडक्टर ने कहा।

'अरै जनानी नीचै ही ठीक है ना?'

'ना ताई, तू ऊपर बैठ, रास्ता रुकै है।' 'अरै ऊपर कैसे बैठ जाऊँ माणसा धोरै? तन्नै शर्म ना आवै पराए मर्दां धोरै बैठाती हाण? यो तेरा ताऊ थोड़ा है जो इस धोरै बैठ जाऊँ? इसनै खड़ा कर दे तो बैठ भी जाऊँ।'

'इसको कैसे खड़ा कर दूँ? और जनानी भी तो आदमियाँ धोरै बैठी हैं?'

'और जनानियाँ का के है? वे तो माणसाँ तै भिड़ कै चालै है! मैं इस बुड्ढ़े धोरै कहतराँ बैठ जाऊँ?' विद्यादेवी ने फिर तपाक से कहा।

'ठीक है ताई, ना बैठ तेरी मर्जी।'

विद्यादेवी वहीं बैठी रही। वह कंडक्टर से बोली- 'हाँ छोरा, मैं उरै ही ठीक हूँ। तू किराया बता कितणा लागै है?'

विद्यादेवी को यह नहीं मालूम था कि बस में कितना किराया लगता है। परंतु वह हर अनपढ़ औरत की भाँति दमड़ी को दाँत से पकड़ती थी। उसे यह तो पता लग गया था कि बच्चों की आधी टिकट लगती है, परंतु आधी टिकट का मतलब नहीं समझती थी। कंडक्टर ने पूछा- 'कितणी टिकट चाहिए?'

'डेढ़ टिकट दे दे, और के सारी बस खरीदूँगी?'

'आधी टिकट किसकी है?'

'सरस्वती की!'

'कौण सरस्वती?'

'अरै या बैठी, तुन्नै ना दिक्खै?'

'कितणी उमर है इसकी?'

'भाई या बड़ा छोरा तै दो साल बाद पैदा हुई थी।'

'कौण बड़ा छोरा?'

'म्हारा जेठ का छोरा?'

'तो मैं क्या करूँ उसका? तू इसकी उमर बता।' कंडक्टर ने खीझकर कहा।

'तो फेर न्यू जाण ले के या मार-काट आले साल तै तीन साल बाद पैदा हुई थी।'

'कौण सा मार-काट आला साल?'

अरै हिंदू-मुसलमानाँ की लड़ाई ना हुई थी?'

खीझते हुए सरस्वती की उम्र का अंदाजा लगाकर कंडक्टर ने उसकी आधी टिकट काट दी। विद्यादेवी आधी और पूरी टिकट में अंतर नहीं समझती थी। कंडक्टर से तपाक से बोली- 'रै छोरा, थमनै इस छोरी की पूरी टिकट फाड़ दी?'

'यह आधी ही है।' कंडक्टर ने कहा।

'आधी कैसे है, पूरी की पूरी ना दिख रही?' फिर उसने टिकट के दो फाड़ किए और आधा भाग कंडक्टर को देते हुए बोली- 'ला, आधे पैसे वापस कर!'

जब और लोगों ने भी समझाया कि कंडक्टर ने आधी टिकट के ही पैसे लिए हैं तो वह उन्हें भी शक की नजरों से देखने लगी। यह बात उसकी समझ में अभी भी नहीं आ रही थी कि वह दूसरी बची आधी टिकट का क्या करे। इतने में उसने पास में एक छोटा सा बच्चा बैठा देख लिया। दूसरी आधी टिकट उसे देते हुए बोली- 'ले छोरा। इसनै तू दिखा दिए!' फिर उसकी माँ की तरफ देखते हुए बोली- 'थमनै इसकी टिकट लेण की जरूरत ना है!'

बस की टिकट लेते ही उसकी दूसरी चिंता जसवंत सिंह डॉक्टर का पता जल्दी से जल्दी जान लेने की थी। उसने अगली सीट पर बैठे एक सरदारजी को पते वाली पर्ची दिखाते हुए कहा- 'सरदारजी, यो जसवंत सिंह डॉक्टर का पता बताइए।'

सरदारजी ने कहा- 'पता तो इस पर पहले ही लिखा है।'

'अरै पता तो लिखा है, मैं के पढ़ी-लिखी हूँ? तू ये बता कि इस डॉक्टर की दुकान कित है?' विद्यादेवी ने कहा।

सरदारजी का नाम खुशवंतसिंह था। उसने सोचा जसवंत सिंह डॉक्टर भी सरदार ही होगा। उसने अपने आप ही अपना अनुमान सही मानते हुए विद्यादेवी की तरफ आशा से भरकर देखते हुए पूछा- 'माई, ये जसवंत सिंह सरदार हैं?'

'भाई, सरदार क्यों है, आदमी है!' विद्यादेवी ने कहा।

'माई, मैं कब कहता हूँ वह आदमी नहीं है? तू ये बता कि वह सरदारजी है?' सरदारजी ने फिर पूछा।

'सरदारजी, तेरा दिमाग खराब तो ना है? तू अच्छे-भले आदमियाँ नै सरदार बणावै है?' विद्यादेवी बोली।

सरदारजी अपना गुस्सा रोकते हुए बोला- 'तो क्या मोना है?'

परंतु विद्यादेवी 'मोना' शब्द का अर्थ भी नहीं जानती थी। उसने सोचा यह सरदारजी नीचे की तरफ बड़ी-बड़ी लटकी हुई मूँछों से ठीक से नहीं बोल पा रहा है और यह बोना पूछा रहा होगा। अतः वह बोली- 'सरदारजी, वो बोना ना है, पूरा छह फुट का जवान है!'

'माई मैं पुछिआ कि की वे मोने हन?' सरदारजी ने जोर लगाकर रुक-रुक कर फिर कहा।

विद्यादेवी सोचने लगी यह सरदार कभी सरदारजी पूछ रहा है, कभी बौना, कभी मोना। फिर कुछ सोचकर बोली- 'सरदारजी, अपणी दाढ़ी-मूँछ हटा कै बोल! म्हारा बटेऊ तो इनमाँ तै कोई सा भी ना है।'

'वो तुम्हारा बटेऊ है?'

'ना रसवंती का बटेऊ है।'

'रसवंती कौन?'

'म्हारे पड़ोस की छोरी!'

अब सरदारजी कुछ समझने लगे। वे समझने लगे कि वह इनका बटेऊ है तो सरदारजी न भी हो। फिर भी जसवंत सिंह नाम सुनकर वह शंका में ही पड़ा रहा और एक बार फिर पक्का करने के लिए विद्यादेवी से बोला- 'माई, पक्का है ना तुम्हारा बटेऊ सरदार नहीं है?'

'अरै सरदार ना है, तेरा तै कितणी बार बताई ना है, ना है! तन्नै फेर वा ही रट लगा राखी है? हम अपणे बटेऊ नै ना जाणाँ के?'

विद्यादेवी ने झुंझलाकर सरदारजी के हाथ से पर्ची ही छीन ली। उसने कहा- 'इसनै तो एक ही रट लगा राखी है सरदार है, बोना है, मोना है? पता ना यो सरदार किस तर्या का आदमी चाहवै है। फिर वह सरदारजी की तरफ देखते हुए बोली- 'अरै अपणी तरया का तो ना पूछ रहा?' सरदारजी उसे देखता ही रह गया। फिर उसने पर्ची दूसरे आदमी को देते हुए कहा- 'ले भाई, तू ही बता। इसनै तो नाम पूछण में ही इतणी देर लगा दी।

दूसरे आदमी ने पर्ची देखी। संयोग से उसे डॉक्टर जसवंत सिंह का पता मालूम था। इसलिए उसने विद्यादेवी को तुरंत बता दिया। विद्यादेवी ने उससे पर्ची लेकर सरदारजी से कहा- 'सरदारजी आदमियाँ और सरदारजी में यों ही फर्क होवै है।' सरदारजी अपना सिर धुनकर रह गया।

आखिर विद्यादेवी किसी न किसी तरह शहर पहुँच ही गई। पूछते-पूछते जसवंत सिंह के क्लीनिक के पास भी पहुँच गई। परंतु क्लीनिक के सामने होने पर भी फिर किसी से क्लीनिक का पता पूछने लगी। तब सरस्वती ने कहा- 'माँ, यह रहा क्लीनिक!'

'तुझे कैसे पता?'

'मैंने क्लीनिक का नाम पढ़ लिया!'

'नाम पढ़ लिया?'

'हाँ, मैंने नाम पढ़ लिया।'

विद्यादेवी को विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी छोटी-सी लड़की भी नाम पढ़कर पता लगा सकती है। वह असमंजस में पड़ी रही। जब तक उसने दूसरे आदमी से क्लीनिक का नाम पक्का नहीं कर लिया, तब तक वह क्लीनिक में नहीं गई। फिर वह सरस्वती से बोली- 'बेटा, मुझे तो हिंदी भी नहीं आती यह तो अंग्रेजी थी।'

'नहीं माँ हिंदी में ही लिखा था।' सरस्वती ने कहा।

'हिंदी में? बेटा मुझे तो अंग्रेजी ही दिखाई दी।' विद्यादेवी ने कहा। सरस्वती ने मुहावरों में 'काला अक्षर भैंस बराबर' पढ़ रखा था। तब उसका मतलब नहीं समझ पाई थी, अब समझ गई थी।

डॉक्टर के क्लीनिक पर पहुँचने पर विद्यादेवी को नम्बर की एक पर्ची दे दी गई। क्लीनिक में एक-एक करके नम्बर बोले जाने लगे। डॉक्टर ने सारे मरीज देख लिए परंतु विद्यादेवी वहीं की वहीं बैठी रही। जब डॉक्टर जाने लगा तो वह कंपाउंडर से बोली- 'रै छोरा! मेरा नम्बर क्यूँ ना आया?'

कंपाउंडर ने उसकी पर्ची देखते हुए कहा- 'ताई तेरा नम्बर तो कितनी पहले चला गया। मैंने कितनी बार बोला था?'

'हमनै के पता था म्हारा नम्बर के था?'

विद्यादेवी सरस्वती को डॉक्टर को दिखाने के बाद इसी प्रकार जूझती-जूझती, शहर के लोगों को कोसते-कोसते गाँव वापस पहुँच गई।

कुछ दिनों बाद गाँव में एक घटना घट गई। स्कूल में दसवीं में पढ़ने वाली एक लड़की को किसी लड़के ने छेड़ दिया और गाँव की निरक्षर औरतें लड़के की बजाय लड़की को ही बदनाम करने लग गईं। तब सरकार के साक्षरता कार्यक्रम को धत्ता बताकर विद्यादेवी ने सरस्वती को विद्या रूपी स्वाति नक्षत्र की उस बूँद से वंचित कर दिया, जिसकी चातक रूपी मनुष्य जीवन भर आशा करता रहता है। माँ को नहीं मालूम था कि संसार में वेद, पुराण, दर्शन, जातक-कथाओं, रामायण, गीता, कबीर के वचन, नानक की वाणी, ईशा मसीह के संदेश जैसी विद्याएँ भी हैं या एजटेक, सिंधु घाटी आर्यन जैसी सभ्यताएँ रहीं हैं या कि आधुनिक काल कितने राजे-महाराजाओं के इतिहास का परिणाम है या यह कितने सतत विकास के बाद आया है। उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं था कि औरतों की दशा सुधारने के लिए कितने समाज-सेवकों ने दहेज, सती, अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा, कन्या वध जैसी कितनी ही प्रथाओं को खत्म करने के लिए अपना जीवन होम कर दिया। उसे यह भी नहीं पता था कि इन सब बातों का ज्ञान शिक्षा से होता है। परंतु यह वह बहुत अच्छी तरह जानती थी कि लड़की की शादी के लिए उसका सुंदर होना और दो-चार क्लाश पास कर लेना काफी है। सरस्वती में ये दोनों गुण थे। इसलिए स्कूल से हटा लेने और उसका जीवन होम करने के लिए विद्यादेवी के लिए यही बात काफी थी। वैसे भी वह उसको 'गुणवंती' बनाना चाहती थी। खाना बनाना, खेत के काम करना, कढ़ाई-सिलाई करना और छोटे बच्चों को खिलाना। गुणवती होने के लिए ये काम आने जरूरी हैं।

...और सरस्वती गाँव की गोबर-कूड़े से भरी जिंदगी में अपना बचपन बिताते हुए जवान हो गई। जवानी में उसका रूप इस प्रकार निखरकर सामने आया जैसे काले बादलों को हटाकर चाँद निकला हो। परंतु सरस्वती के सौंदर्य की अभी सोलह कलाएँ भी पूरी नहीं हुई थीं कि पिता विदुर ने उसे घूँघट में ढक दिया। सरस्वती का दूल्हा उससे थोड़ा अधिक पढ़ा था। आठ पास था, परंतु किशोरावस्था से ही शराब का आदी था। उसे रोज मारता-पीटता और बिना किसी बात के गालियाँ देता। उसने सरस्वती का जीना दूभर कर दिया। सरस्वती दो साल में ही दो बच्चे लेकर अपने घर वापस आ गई। मासूम कली खिलने से पहले ही मुरझा गई। माँ-बाप के पास कुछ दिन उसके ठीक-ठाक निकले। परंतु बाद में वह भाभियों और माँ को भी अखरने लगी। सांसारिक व्यवहार है। बेटी ससुराल आती-जाती रहे तो ही

अच्छी लगती है। अतः आए दिन सब उसी के साथ नोक-झोंक करने लगे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसके साथ की कुछ लड़कियाँ अभी पढ़ ही रही थीं और वह बेचारी अपढ़ दो बच्चों का भार ढो रही थी। ऐसे समाज में कभी उसकी भाभियाँ उस पर हाथ उठातीं, कभी माँ, कभी बाप और कभी भाई। उसके बच्चे उसे अक्सर पिटते देखते। उसे सबसे लोहा लेना पड़ता। अपने परिवार में वह एक अनचाही वस्तु हो गई थी। उसके परिवार में अपढ़ता और अज्ञानता के कारण शीलता, नम्रता नाम की कोई चीज नहीं थी। परंतु ईश्वर ने उसे और ही तरह के संस्कार दिए थे। वह सबसे शीलता से पेश आना चाहती थी और नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहती थी। परंतु उसके अनपढ़ परिवार वाले उसकी मितभाषिता और नम्रता को उसके घुन्नेपन और जिद के रूप में लेते थे। सरस्वती अपने ही परिवार में घुल न पाई। उसमें न पढ़ पाने की एक टीस थी। उसने अपनी माँ के साथ एक ही दिन शहर जाकर देख लिया था कि अनपढ़ आदमी को जिंदगी में कितना जूझना पड़ता है। न वह किसी को अपनी बात समझा सकता है, न किसी की बात समझ सकता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश तेज होने पर भी उल्लू को दिखाई नहीं देता और वह अंधेरे को ही अपना साथी बनाता है, उसी प्रकार अशिक्षित व्यक्ति के सामने सब कुछ होते हुए भी वह अज्ञानी बना रहता है और डरा-डरा रहता है। वह दूसरों पर आश्रित बना रहता है और लोग उस पर हँसते रहते हैं। लोग सरस्वती के सामने पढ़े-लिखे लोगों को सर, मेंडम आदि कहते, परंतु उसके माँ-बाप को रूखे ढंग से बोलते। इसी प्रकार पढ़ी-लिखी लड़कियों को वे बेटी कहकर बोलते, परंतु वह और लड़कियों से ज्यादा लंबी-तगड़ी होने पर भी वे उसे छोरी-छोरी कहकर बोलते। यह बात उसे बहुत बुरी लगती। उसने देखा कि शिक्षा के बिना लोग किसी की कद्र नहीं करते। वे उनकी सहायता भी नहीं करते और उन्हें मनमाने ढंग से बेवकूफ बनाते रहते हैं। वह शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरह के मनुष्यों की जिंदगी के रूप निकटता से देख रही थी। उसे अंधकार से भरी जिंदगी रास नहीं आ रही थी। इस दौरान उसने यह भी देखा कि माँ-बाप शादी के बाद बेटे की पढ़ाई पर पर तो खर्च कर देते हैं, परंतु बेटी की पढ़ाई पर नहीं। यूँ उसने माँ के शहर में जूझते समय ही ठान लिया था कि वह तो खूब पढ़ेगी, परंतु असहाय उम्र में जब उसे पढ़ाई से उठा लिया गया था तो वह कुछ नहीं कर पाई थी। परंतु अब वह बड़ी हो गई थी और पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहती थी। परंतु उसके सामने यह समस्या थी कि वह पढ़े या अपने बच्चों का पेट पाले। ऊपर से उसके अनपढ़ माँ-बाप पढ़ाई के ही विरुद्ध थे। फिर भी उसका मन उस पर पढ़ने के लिए बार-बार दबाव डालता रहा। इसलिए उसने पढ़ने का मन बना लिया।

एक दिन वह पड़ोस के किसी लड़के से पढ़ने चली गई, परंतु यही बात उसके लिए बवाल का विषय बन गई। पढ़ाई की महत्ता बार-बार समझाने से भी न समझने वाले विदुर और विद्यादेवी भला ब्याही-थ्याही लड़की का पड़ोस के लड़के से पढ़ना कैसे स्वीकार कर सकते थे? उन्होंने उसे उसके पास जाने से मना कर दिया। फिर सरस्वती ने लड़के की बहन से पढ़ना शुरू किया तो उससे भी उन्होंने न पढ़ने दिया। वे सोचने लगे कि सरस्वती बिगड़ती जा रही है। उनका तो सोचना ही यही था कि पढ़-लिखकर आदमी बिगड़ जाता है। इसलिए उन्होंने उसके पढ़ने पर ही पाबंदी लगा दी। सरस्वती के लिए जहाँ अपने अनपढ़ माँ-बाप का कहना मानने के सिवाय और कोई चारा न था, वहाँ उसकी अंतरात्मा भी उसे पढ़ने के लिए बार-बार उकसा रही थी। वह तो केवल यही सोचती रहती कि जब और लड़कियाँ पढ़ रही हैं तो वह क्यों नहीं पढ़ सकती? इसलिए अब उसने लुक-छिपकर पढ़ना शुरू कर दिया। कापियों में लिखने की बजाय उसने सलेट पर लिखना शुरू किया, ताकि उसके पढ़ने का कोई प्रमाण न रहे। परंतु पढ़ने-लिखने जैसी चीज को अधिक दिनों तक छिपाया नहीं जा सकता। अतः उसके माँ-बाप को भी पता लग गया। वे उसके और विरुद्ध हो गए और उसे पढ़ती देख कभी उसे जोर से डाँटते, कभी मारते। परंतु वह घर का सारा काम करते हुए, अपने बच्चों को पालते-पोसते हुए सबकी मार खाते हुए पढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे उसने आठवीं तक की पुस्तकें पढ़ डालीं। एक दिन उसे आंगनबाड़ी की शिक्षिका से पता लगा कि वह आठवीं के फार्म प्राइवेट रूप से भी भर सकती है। शिक्षिका की सहायता से उसने अपनी कमाई से आठवीं के फार्म भर दिए। माँ-बाप के विरोध के बावजूद अब वह उस शिक्षिका से ही लुक-छिपकर पढ़ने लगी। परंतु अब उसके सामने एक और कड़ी परीक्षा थी। उसकी आठवीं की परीक्षा का केंद्र पास के शहर में पड़ा था और माँ-बाप की अनुमति के बिना वह कई दिनों तक वहाँ रोज अकेली जा नहीं सकती थी। उसे पता था कि यह अनुमति मिलनी भी नहीं है। इसलिए उसने परीक्षा भी गुपचुप देने की योजना बना ली। सरस्वती पहले दिन शिक्षिका को साथ ले जाकर परीक्षा तो दे आई, परंतु पूरे दिन उसके बच्चे घर में अकेले रहने के कारण उसके माँ-बाप को पता लग गया। उसके शहर से आते ही उन्होंने उसे आड़े हाथों ले लिया। सरस्वती चुपचाप उनकी बातें सुनती रही, क्योंकि उसे अगले दिन की परीक्षा देने भी जाना था और उसकी तैयारी भी करनी थी। उसके माँ-बाप ने उसे अगले दिन जाने से सख्त मना कर दिया। परंतु वह अपनी मेंहनत को यूँ बेकार

नहीं जाने दे सकती थी। वह ढीठ बन गई। उसके माँ-बाप उसे रोज जाने से मना करते, उसके साथ झगड़ा करते और वह सबके साथ लड़-भिड़कर चली जाती। उसके आने के बाद वे फिर झगड़ा करते। ...और उन्होंने उसके अकेले शहर जाने पर उसे गाँव में बदनाम कर परीक्षाओं के बीच ही उसका सामान अपने घर से बाहर फेंक दिया। परंतु उसने अपने आपको साधे रखा। उसके विचार में एक तरफ तो यह उसके लिए अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब वह शेष परीक्षाएँ बिना किसी विरोध के दे सकती थी। दूसरी तरफ उसके लिए रहने की भी समस्या थी। पड़ोस के एक समझदार व्यक्ति धर्मसिंह ने उसे यह सोचकर अपने घर रख लिया कि गाँव की बेटी अपनी ही बेटी होती है, वह इस तरह अकेली कहाँ जाएगी और दो-चार दिनों में उसके माँ-बाप का गुस्सा ठंडा हो ही जाएगा। परंतु क्षिप्र और विद्यादेवी का गुस्सा कभी ठंडा नहीं हुआ। सरस्वती कई वर्षों तक उसी व्यक्ति के पास रहे रही। उसने अपनी सेवा से उनका दिल जीत लिया। इसी दौरान उसने आठवीं और दसवीं की परीक्षाएँ पास कर लीं। उसने धर्मसिंह द्वारा दिए गए एक छोटे से प्लाट पर अपनी कमाई से एक कमरा भी बना लिया। अब वह अलग रहने लग गई। उसके माँ-बाप उसे इस तरह अपने हाथों से निकलते देख उसे और बदनाम करने लगे। जिस उम्र में कई लड़कियों की शादी भी नहीं होती, उस उम्र में सरस्वती अपने दो बच्चों सहित ऐसा संघर्षभरा जीवन जी रही थी। लोग नाते-नाती देखकर प्रसन्न हो जाते हैं, परंतु अज्ञानता से भरे उसके माँ-बाप को अपने नाते-नातियों पर भी प्यार नहीं आया। फिर भी सरस्वती ने हिम्मत नहीं हारी। वह पढ़ती ही गई, पढ़ती ही गई। उसने बीए और एमए दोनों परीक्षाएँ पास कर लीं। अब उसने अपनी कहानी को उलट दिया था। एक समय था जब वह बच्चे पैदा कर रही थी और उसकी सहेलियाँ पढ़ रही थीं। परंतु अब वह पढ़ रही थी और उसकी सहेलियाँ बच्चे पैदा कर रही थीं। अपनी लगन और साहस से उसने गोबर से लथपथ अज्ञानता से भरी जिंदगी को उलटबासी की तरह उलट दिया था। अब वह एक सुशिक्षित महिला थी। अब वह गाँव की दूसरी लड़कियों को पढ़ाती थी। पास के जिस शहर में उसकी माँ उसे दवाई दिलाने के लिए जूझती हुई ले गई थी, उसी शहर के एक पब्लिक स्कूल में पढ़ाने के लिए वह बड़ी आसानी से आ-जा रही थी। उसने अपने घर के आंगन में भी एक छोटा-सा स्कूल खोल लिया था। अपनी माँ की तरह अब उसे जिंदगी के हर मोड़ पर जूझना नहीं पड़ रहा था। उसे अब किसी बात से डर नहीं लगता था। वह सबसे खुलकर बातें करती थी। वह हर रोज समाचार-पत्र मंगाती थी। समाचार-पत्रों में कभी-कभी उसके लेख भी छपते थे। अब वह एक सम्मानपूर्ण जिंदगी जी रही थी। उसकी भाभी या भाई अब उसे डाँट नहीं सकते थे। वे उसके सामने याचक से बने रहते थे। उसके बच्चों को भी वे सम्मानपूर्वक देखते थे। सरस्वती का वक्ष गर्व से तना रहता। उसके मुख पर आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता और ज्ञान का तेज रहता। उसने गाँव के और लोगों को भी लड़कियों को पढ़ाने और उनकी शादी कम उम्र में न करने का मार्गदर्शन दिया। वह गाँव की चहेती बेटी बन गई थी। उसके बच्चे अब उन कक्षाओं को कब के पार कर चुके थे, जहाँ कभी उसकी जिंदगी समाप्त-सी हो गई थी। परंतु सरस्वती ने उस जिंदगी की तरफ पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह अब एक पल के लिए भी अपने आपको उस करुणाजनक जिंदगी में नहीं ले जाना चाहती थी। वह तो अपने को और ऊँचा उठाने के लिए नई से नई परीक्षाएँ देती रहती थी। उसने केवल आगे बढ़ना सीखा था। वह गाँव में सरस्वती की धारा की तरह बह रही थी, सबको जिंदगी का कोई न कोई नया पल देते हुए। उसने गाँव के लोगों को जिंदगी जीने का नया ढंग सिखाया था। अपने उदाहरण से उसने लोगों को कन्याओं की भ्रूण-हत्या के विरुद्ध चेतने को भी विवश कर दिया था।

इस प्रकार सरस्वती ने गाँव को एक नया जीवन और नई विचारधारा दी। परंतु उसका अपना जीवन अभी सुचारू रूप से चलने ही लगा था कि आमोद-प्रमोद के इसी माहौल में एक दिन पास के थाने से दो सिपाही उसे पूछते हुए आ धमके। गाँव में आते ही वे कई लोगों से सरस्वती के चाल-चलन के बारे में पूछने लग गए। यह खबर गाँव में आग की तरह फैल गई। सिपाही उसके बारे में पूछते-पूछते जब तक सरपंच के घर पहुँचे, तब तक वहाँ लोगों का जमघट लग चुका था। लोगों में बहुत कुतुहल था। सब यह सोचकर हैरान थे कि आखिर सरस्वती ने ऐसा क्या कर दिया। कुछ लोग तो यह भी सोचने लगे कि सरस्वती ने गाँव की नाक कटाने का कोई काम तो नहीं कर दिया? यदि ऐसा हुआ तो हद हो जाएगी। कुछ लोग सोचने लगे ब्याही-थ्याही लड़की को गाँव में रखना ही ठीक नहीं था। सबके बीच काना-फूँसी शुरू हो गई। जो जैसा सोच सकता था, उसने वैसा ही सोचा। गाँव की औरतों की तो बात ही अलग थी। उनमें से कुछ कह रही थीं कुलछिणी होगी, शहर अकेले ऐसे थोड़े ही जाती है? कई-कई लड़के साथ लगे रहते हैं। किसी के साथ काला मुँह किया होगा या उलटे धंधे करती होगी। इतनी उम्र हो रही है, ऐसे ही थोड़े रहती होगी। जरूर यह अपने पेट में किसी का पाप ढो रही होगी। यह गाँव की और लड़कियों को भी बिगाड़ेगी। इसे गाँव से भगा देना चाहिए था, यह तो चुड़ैल है आदि, आदि। उसके माँ-बाप लोगों की ऐसी बातें सुन-सुनकर सरस्वती पर गुस्सा कर रहे थे। वे सोच रहे थे-'इस लड़की को तो पैदा होते ही मार देना चाहिए था या जब यह शहर

जाने लगी थी तभी मार देते, बड़ी गलती हो गई, यह म्हारी नाक कटा रही है, अभी थोड़ी देर में पता नहीं के बात निकलैगी। पुलिस इसनै इभी पकड़ ले जागी और हम कहीं के ना रहैंगे। हे भगवान्, ऐसा होण तै पहले हमनै इस संसार तै ही ठा ले। हम किस-किस को क्या कहेंगे, किस-किस को जवाब देंगे। भगवान तूने ये दिन क्यों दिखाया? हमनै ऐसा कौण-सा पाप कर दिया था जो या लड़की म्हारै पैदा हुई। अच्छा रहा हमनै तो इसकै पहले ही धक्का दे दिया था, कुछ तो बचाव होगा। हम तो लोगाँ तै पहले ही कहै थे कि या छोरी ठीक ना है। म्हारा इस तै कोई मतलब ना है। हम तो इब भी अपणा पल्ला साफ झाड़ लेंगे। कह देंगे हमनै ना है इस तै कोई लेणा-देणा। इसके साथ जैसा चाहो वैसा सलूक करो। 'उन्हें अब अपने बचाव की बात सूझ गई थी। इसलिए ऐसा सोच वे अपने आपको ढाढस देकर सिर ऊँचा करके खड़े हो गए।'

कानाफूँसी के इसी वातावरण में जब सिपाही बोलने लगे तो सब चुप हो सुनने लगे। सिपाहियों ने जोर से पूछा-'सरस्वती कौन है?'

सब दंग रह गए। कुछ लोग और लुगाइयाँ एक-दूसरे को कहने लगे- 'देखा, वही बात निकली ना?'

सरपंच ने कहा- 'विदुर की लड़की है।'

'उसे इधर बुलाओ!'

लोग डरकर और निस्तब्ध होकर देखने लगे। परंतु अपना नाम सुनते ही सरस्वती तेज चाल चलते हुए निर्भीकता से आगे आ गई। कुछ औरतें कहने लगीं- 'देखो कितणी बेशर्म है, खुद ही भागी आ रही है।'

सिपाहियों ने सरस्वती से पूछा- 'तू क्या करती है?'

इस प्रश्न पर गाँव के लोगों को और अधिक शक हो गया।

'शहर के मॉडल स्कूल में पढ़ाती हूँ।'

'कितने दिनों से?'

'छह महीनों से!'

'यह फोटो तुम्हारा ही है ना?'

'जी हाँ, मेरा ही है।'

'तुमने कभी कोई ऐसा-वैसा काम तो नहीं किया?'

'कैसा?'

'कोई गलत काम?'

'नहीं।'

'तुम्हारे विरुद्ध किसी थाने में कोई केस है?'

'नहीं।'

फिर उन्होंने गाँव के सरपंच और पंचों से पूछा - 'इसका चाल-चलन ठीक है?'

'जी ऐसी तो कोई बात नहीं।' सरपंच ने कहा।

'किसी से झगड़ा तो नहीं करती?'

तब उसके माँ-बाप कहने को हुए- 'हमसे करती है!' परंतु उन्हें धर्मसिंह ने चुप कर दिया।

फिर सरपंच ने कहा- 'नहीं, कभी नहीं।'

सिपाही पूछे जा रहे थे और लोग हैरानी से सुने जा रहे थे। उनका धैर्य यह जानने की व्यग्रता में चुकता जा रहा था कि सरस्वती ने कौन सा बुरा काम किया है। तभी सिपाहियों ने सरपंच से कहा- 'सरपंच जी, सरस्वती आपके गाँव की बड़ी महान बेटी है। इसने तो गाँव का नाम ही रोशन कर दिया! ऐसी लड़की भला किस गाँव को मिलती है? यह तो समझो इसे वरदान में मिली है। इसने आईएएस परीक्षा पास कर ली है। हम इसकी कैरेक्टर वैरीफिकेशन करने आए थे। अब यही तुम्हारी डीसी बनेगी। पूरे हलके में कोई डीसी लड़की नहीं है। यह हलके की पहली डीसी लड़की होगी। गाँव ने कोई पुण्य किया है जो इस लड़की ने यहाँ जन्म लिया है। यह तो देवी है, साक्षात् सरस्वती देवी...! 'सिपाही कहे जा रहे थे। लोगों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं थी। वे सरस्वती की उपलब्धि से सम्मोहित होते जा रहे थे। उन पर जादू का-सा असर हो रहा था। कुछ लोग खुशी के मारे फूले नहीं समा रहे थे। किसी की आँखें खुशी के आसुँओं से लबालब थीं तो कुछ कहे जा रहे थे- 'सरस्वती बेटी अफसर बन गई, सरस्वती डीसी बन गई, सरस्वती..., म्हारे गाँव की छोरी...। 'पूरे गाँव का माहौल ऐसे बदल गया था जैसे भयंकर तूफान की जगह बरसात आ गई हो, जैसे सारे देव फूल बरसा रहे हों। लोगों की खुशी ने इतना व्यापक रूप ले लिया था मानो यह खबर पूरे देश में फैल गई हो। तभी सिपाहियों ने कहा- 'अरे भाई कुछ मिठाई-विठाई खिलाओ, लोगों का मुँह मीठा कराओ। कितनी अच्छी खबर है! 'तब कुछ लोग पहले तो सरस्वती के माँ-बाप की तरफ देखने लगे, परंतु उनसे कोई प्रतिक्रिया न देख वे मंद पड़ गए। उसके अनपढ़ माँ-बाप सरस्वती की उपलब्धि को समझ ही नहीं पाए थे। तब सरपंच ने खुश होकर पूरे गाँव को अपनी तरफ से मिठाइयाँ बाँटीं। उसने सिपाहियों का झोला भर दिया। सिपाही चले गए, परंतु गाँव में खुशी का यह माहौल हमेशा के लिए रह गया। लोग सरस्वती को हाथों-हाथ ले रहे थे। फिर भी उसके माँ-बाप समझ ही नहीं पा रहे थे कि आखिर सरस्वती अचानक इतनी बड़ी कैसे हो गई। दूर-दूर के गाँवों से लोग सरस्वती को देखने आने लगे थे। उसके यहाँ हमेंशा जमघट लगा रहने लगा। बहुत जल्दी सरस्वती ने नई जिम्मेदारी संभाल ली। परंतु अभी उसे अपनी जिंदगी की एक और कमी दूर करनी थी। उसके माँ-बाप ने उसे शुरू में बेशक पढ़ाई से हटा लिया था, परंतु उसने स्वयं एक गुणात्मक जिंदगी

जियी थी। उसने अपने माँ-बाप से कई बार कहा था कि उसके बच्चों को उनके बाप से मिला दो, परंतु उसके माँ-बाप अपने शराबी दामाद से बहुत नफरत करते थे। परंतु अब वह अपने पैरों पर खड़ी हो गई थी और अब अकेले अपने बल पर ही कुछ भी करने की हिम्मत रखती थी। अतः वह अपनी जिंदगी के बिखरे पन्नों को संवारने के लिए भी चल पड़ी। उसके मनोबल को देखते हुए गाँव के कुछ लोग भी उसके साथ हो लिए; कौन जाने उसे सहारा देने के लिए या उससे सहारा पाने के लिए?

सरस्वती गाँव के लोगों को साथ ले ससुराल पहुँच गई। उसकी ख्याति उससे पहले ही ससुराल पहुँच चुकी थी। ससुराल वालों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया। एक ही दिन में ससुराल में सरस्वती का डंका बज गया। शाम को सरस्वती की मुलाकात अपने पति से भी हुई। तो सरस्वती की आँखों में आंसू आ गए। न जाने उसकी हालत देखकर या चोदह वर्षों बाद उससे मिलने के कारण। परंतु उसने अपने आंसू बहने नहीं दिए। उसने वे आंसू समेंट लिए। वह प्रण कर चुकी थी कि वह अपनी बीती जिंदगी पर कभी आंसू नहीं बहाएगी, बल्कि अपनी बीती जिंदगी को तो उसने अपने वर्तमान का आधार माना। उसने चेहरे पर आत्म-विश्वास लाते हुए पति से कहा- 'मैं आपको लेने आई हूँ। बच्चे आपसे मिलना चाहते हैं। उन्हें सहारा दो। आप चलेंगे न?'

> वह सकारात्मकता में, बिगड़ी हुई व्यस्थाओं को ठीक करने में विश्वास रखती थी, उन्हें बिगाड़ने या और अधिक बिगड़ने देने में नहीं।

सरस्वती का पति अपनी महिमावान पत्नी के इतनी मीठे वचन सुनकर पानी-पानी हो गया। उसके सामने अब वह अपने आपको बहुत छोटा समझ रहा था। उसके हाथ जुड़ गए। इन हाथों से वह न जाने अपने अपराधों की क्षमा मांग रहा था या सरस्वती की कर्मठता को स्वीकार कर रहा था। उसकी आँखें आंसुओं से भरी थीं। सरस्वती ने उसके आंसू पौंछे और उसके जुड़े हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा- 'पीछे मुड़कर नहीं देखना है। बस कल मेरे साथ चलना है।' पति ने आंसू भरी आँखों और ग्लानि भरे मस्तक को सरस्वती की गोद में रखकर जैसे हामी भर दी।

पति को लेकर सरस्वती अपने घर आ गई। अपने साहस से उसने गाँव की विचारधारा को ही मोड़ कर रख दिया। घर आकर उसने अपने पति के बारे में किसी को कुछ ऐसा-वैसा नहीं कहने दिया। उसने यही देखा कि जब हमने इनको दुबारा अपना लिया है, तो ये ही मेरे पति हैं, मेरे बच्चों के पिता हैं, मेरे परिवार के मुखिया हैं, अब ये आठ पास नहीं हैं, आईएएस अफसर के पति हैं। वह उसकी भी गरिमा बनाए रखना चाहती थी। वह उसे झुकने नहीं देना चाहती थी। अपने पति का मान वह अपना मान समझती थी। उसे विश्वास था कि एक दिन वह अपने पति को भी सूर्य से आँखें मिलाने और हिमालय के सामने सीना तानने लायक बना देगी। उसने अपने माँ-बाप को भी क्षमा कर दिया। उसने यही सोचा कि मेरा असली सम्मान भी तभी होगा, जब लोग मेरे माँ-बाप का सम्मान भी करेंगे। वह उनके साथ फिर घुल-मिलकर उन्हें खुशी के पलों का आनंद दिलाने लगी।

शराब छोड़ने का डाक्टरी कोर्स पूरा कराकर सरस्वती पति और बच्चों के साथ वापस ससुराल रवाना हो गई, क्योंकि उसे अपने ससुराल को गरिमा देनी थी। वह समझती थी कि उसके पति को असली गरिमा तभी मिलेगी, जब वह अपने घर रहेगा, घर-जमाई बनकर नहीं। उसे स्वयं को और उसके बच्चों को भी असली सम्मान अपने घर में ही मिलेगा। उसके सास-ससुर को भी सम्मान तभी मिलेगा। वह किसी को नीचा नहीं दिखाना चाहती थी। वह अपने कारण किसी की बेइज्जती नहीं होने देना चाहती थी।

गाँव वालों ने उसे भाव-भीनी विदाई दी। उसकी अनुपस्थिति में उन्होंने एक अलग ही बात देखी। पौराणिक सरस्वती बेशक सूखकर प्रवाहहीन हो गई थी, परंतु गाँव की सरस्वती गाँव में अभी भी बहे जा रही थी। गाँव का हर आदमी अब अपनी बेटियों को पढ़ा रहा था, उन्हें इज्जत से बोल रहा था। अब हर आदमी उनमें सरस्वती का चेहरा देख रहा था। गाँव के हर परिवार ने सरस्वती का फोटो अपने घर में टांग लिया था। पौराणिक कथाओं की तरह गाँव का हर आदमी अपनी हर छोटी लड़की को सरस्वती की कथा सुनाता था, उसकी पूजा कराता था। सरस्वती हर घर में बस गई थी। गाँव का हर आदमी अब उसे अपने गाँव की बता कर गौरव महसूस करता था। कोमल-सी वह बेल जो कभी अपनी कोमलता से लरज कर टूट जाने के डर से पेड़ का सहारा ढूँढ़ा करती थी, आज वही पूरे गाँव की आशाओं की स्रोत-स्रविनि बन गई थी। जब वह डीसी दरबार लगा लोगों की समस्याएँ सुलझाने लगी, तो उसके माँ-बाप भी समझ गए कि बेटी भार नहीं, अपनी शक्ति होती है।